प्रवचन-१४९, श्लोक-२१४-२१५, गाथा-१२९-१३०,
सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण ११, दिनांक ०९-०६-१९८०

नियमसार, १२९ गाथा।

जो दु अट्ठं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२९।।

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२९॥

टीका : यह आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा... समझाना है न? **आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा सनातन (शाश्वत) सामायिकव्रत के स्वरूप का कथन है।** है तो सामायिक पर्याय, परन्तु शाश्वत ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञानस्वरूप है, जाननहार है। वह किसी का करनेवाला तो नहीं, परन्तु पर को जाननेवाला है, यह व्यवहार है। ऐसा जो उसका ज्ञानस्वरूप है, उसके भान द्वारा आर्त और रौद्रध्यान का त्याग (होता है), वहाँ समस्वभाव जो प्रगट होता है, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा!

नित्य-निरंजन... आहाहा! कायम की जिसकी सत्ता है। नित्य-कायम सत्ता जिसकी है, ऐसा नित्य निरंजन। जिसे अंजन नहीं। नित्य निरंजन त्रिकाल अंजन रहित। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य निरंजन है। आहाहा! **निज कारणसमयसार के स्वरूप में...** ऐसा जो निज कारणसमयसार त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, उसके **स्वरूप में नियत (-नियम से स्थित)...** नियत अर्थात् निश्चय से रहा हुआ। आहाहा! **नित्य-निरंजन निज कारणसमयसार...** उसका जो ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसमें जो रहा हुआ। आहाहा!

शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत के पान में परायण... रहकर उसमें अन्दर में रहा। ज्ञानस्वरूपी भगवान में रहा, टिका, तब क्या मिला? **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग...** शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग **सुखामृत के पान में...** वीतरागी आनन्द के पान में तल्लीन है। आहाहा! इसका नाम सामायिक। शब्द भी सुने न हों। सामायिक किसे कहना? आहाहा! **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत...** अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, नितय ध्रुव शाश्वत, उसमें स्थित। और स्थित होने से **पान में परायण...** उस वस्तु के पान में - अनुभव में परायण। आहाहा!

आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप करे क्या? किसका करे? पर का करे? राग करे? नहीं, नहीं। पर को जाने, यह भी व्यवहार। आहाहा! यहाँ कहना क्या है?—कि व्यवहार से पर का कर सकता है—यह तो शब्द भी नहीं है, वह तो कथनमात्र शब्द है। पर को जानता है - यह भी व्यवहार है। वह अन्दर स्व को जानता है, इसका नाम निश्चय है। आहाहा!

अन्दर में रहने पर **परम-वीतराग-सुखामृत...** वीतरागी सुख का अमृत, उसके **पान में परायण...** उसे पीने में, अनुभव में परायण। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के पान में अर्थात् अनुभव में जो तत्पर है। आहाहा! जहाँ राग और द्वेष का कण नहीं, जहाँ चैतन्य के सुखामृत से भरपूर शुद्ध निरंजन ध्रुव सत्ता है, उसमें तत्पर है। **ऐसा जो जीव तिर्यंचयोनि, प्रेतवास और नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है,...** आहाहा! आर्तध्यान और रौद्रध्यान प्रेतवास अर्थात् व्यन्तर और भूत के भव हों। कोई ऐसा साधारण शुभभाव हो तो व्यन्तर के भव हों। आहाहा! नारकी। पाप के तीव्र भाव से नरक आदि, मनुष्य और देव आदि गति। उसकी योग्यता के हेतुभूत। चार गति की योग्यता के हेतुभूत। चार गति जिस भाव से मिले, उसके हेतुभूत। **आर्त और रौद्र दो ध्यानों को...** आहाहा! आर्त और रौद्र ध्यान से तो चार गति मिलती है, परिभ्रमण मिलता है। आहाहा! उसे **नित्य छोड़ता है,...** उन दो ध्यान को नित्य तजता है।

अन्तर के सुखामृत के... ज्ञानस्वरूपी आत्मा, वह क्या करे? पर का कुछ करे? पर को मारे? पर को बचावे? वह क्या करे? कुछ नहीं करे। आहाहा! मात्र होता हो, उसे जाने। इसलिए आर्त और रौद्रध्यान नहीं होता। होता हो, उसे जानता है। वह जानने का व्यवहार है, इसलिए वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होता। आहाहा! किसी को दूर करना है, किसी को मिलना है, किसी के साथ मेल करना है, यह कुछ है नहीं। जहाँ आत्मा के साथ मेल किया है, नित्य निरंजन भगवान सुखामृत के साथ जहाँ मेल करके अन्दर अनुभव करता है, उसका पान करता है। निर्विकल्प आनन्द का पान करता है। आहाहा!

वह **प्रेतवास...** अर्थात् हल्का देव **और नारकादिगति...** तिर्यंच, मनुष्य। उसकी **योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है,...** आहाहा! **उसे**

वास्तव में... उस जीव को वास्तव में **केवलदर्शनसिद्ध (-केवलदर्शन से निश्चित हुआ)...** केवलज्ञान से सिद्ध हुआ। आहाहा! ऐसा **शाश्वत सामायिक व्रत है।** उसे सामायिक व्रत सच्चा है। शाश्वत शब्द से (आशय) सच्चा। जैसा भगवान शाश्वत् है, वैसी ही पर्याय प्रगट हुई है और शान्ति में रमता है, वह भी एक शाश्वत है। आहाहा! इसका नाम सामायिक है।

श्लोक-२१४

[अब इस १२९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(आर्या)

इति जिनशासनसिद्धं सामायिकव्रतमणुव्रतं भवति।
यस्त्यजति मुनिर्नित्यं ध्यान-द्वय-मार्त-रौद्राख्यम् ।।२१४।।

(वीरछन्द)

जो मुनि आर्त रौद्र इन दोनों ध्यानों को नित प्रति छोड़ें।
जिनशासन में सिद्ध उन्हें अणुव्रतमय सामायिक व्रत है॥२१४॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रत सामायिकव्रत है ॥२१४॥

श्लोक - २१४ पर प्रवचन

[अब इस १२९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

श्लोकार्थ : इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को... मुनि की

मुख्यता से बात है। जो कोई मुनि आत्मा के आनन्द में रमता है। आहाहा! आत्मा के सुखामृत में जिसकी लीनता है, उसे आर्त और रौद्रध्यान नहीं होते। **दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है...** अर्थात् उसे नहीं होते। छोड़ना चाहता है न? यह आर्त और रौद्रध्यान तजूँ, ऐसा नहीं। यह समझाने की शैली है। सुख आनन्द अमृत प्रभु, जिसका जीवन अमृत जीवन है। ऐसे अमृत जीवन में जो लीन है, उसे आर्त और रौद्रध्यान नहीं होते। उत्पन्न नहीं होते, उसे तजता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी सामायिक की बातें! वे तो दो घड़ी णमो अरिहंताणं करके... करके... सामायिक हो गयी। अरे! भाई! एक सेकेण्ड की सामायिक भव के अन्त को लावे, क्योंकि भव का अन्त, भव और भव के कारण, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है, वह तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसके स्वरूप की लीनता करने से, संसार के कारण जो आर्त और रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होते, उन्हें यहाँ तजता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

सवेरे तो आया था न? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। आहाहा! करता नहीं परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को जानता है, यह भी व्यवहार है। होनेवाली दशा को (जाने), जड़ की और परद्रव्य की होनेवाली अवस्था, उसे ज्ञान का स्वभाव भगवान का है इसलिए जानना, वह भी पर को जानना यह भी व्यवहार है। पर को करना, यह तो वस्तु में है ही नहीं। आहाहा! राग का करना, यह भी वस्तु के स्वरूप में नहीं है तो फिर हाथ-पैर हिलाना, मैं हाथ-पैर को हिला सकता हूँ, यह मान्यता तो एकदम मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। उसे जैन की खबर नहीं है। आहाहा!

'घट-घट अन्तर जिन बसे' तुम्हारा लड़का बोलता है। सिद्धप्रकाश। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' चार वर्ष का छोटा लड़का है। 'घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' 'घट-घट अन्तर जिन बसे' घट-घट अन्तर जिन प्रभु विराजमान है। आहाहा! जिसके अन्दर में आर्त और रौद्रध्यान और कोई शुक्ललेश्या भी नहीं। आहाहा! शुक्ललेश्या भी जिसमें नहीं। भव और भव का कारण जिसमें नहीं। आहाहा!

जो अकेले ज्ञानानन्दस्वभाव से, अनन्त ऐसे दूसरे गुणों से भरपूर है। उसे पकड़कर उसमें स्थिर हो, तब आनन्द का अनुभव होता है, तब आर्त और रौद्रध्यान उत्पन्न नहीं होता,

इसलिए वह सामायिक सच्ची कही जाती है। आहाहा! नहीं तो खोटी सामायिक है। आहाहा! खोटी में भी नुकसान कितना? सामायिक नहीं और सामायिक माने, इसलिए मिथ्यात्व का बड़ा पाप है। सामायिक का स्वरूप जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जाना नहीं और दूसरे प्रकार से करता है और मानता है... आहाहा! उसकी मान्यता ही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व, वह संसार है। मिथ्यात्व ही संसार है। आहाहा! गजब बात है। इस भाव सामायिक बिना द्रव्य सामायिक करनेवाले जीव संसारी हैं अर्थात् संसार में भटकनेवाले हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

२१४ कलश। **इस प्रकार, जो मुनि आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है...** अर्थात् होने नहीं देता और उसके स्थान में **उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रत सामायिकव्रत है।** यह सामायिक है, वह अभी अणुव्रत है। आहाहा! भगवान की सामायिक समता वीतरागता पूर्ण, वह पूर्ण है। मुनि को भी आत्मध्यान में हो और आनन्द में स्थिर रहे, उस सामायिक को भी यहाँ अणुव्रत सामायिक कहा है। आहाहा! क्योंकि पूर्ण वीतराग सर्वज्ञपना अभी आया नहीं। भले अन्दर सुखामृत में आत्मा के आनन्द में तृप्त रहे, परन्तु पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए उस सामायिक को अणुव्रत सामायिक कहा जाता है। अणुव्रत अर्थात् यह गृहस्थ के अणुव्रत हैं, वह नहीं। इस सामायिक को ही अणुव्रत कहा जाता है। आहाहा! छोटा व्रत है।

पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण जहाँ प्रगट होता है। आहाहा! उसके ज्ञान का प्रकाश अर्थात् ध्रुवस्वभाव ज्ञान जहाँ पूर्ण प्रगट होता है, आनन्द पूर्ण प्रगट होता है, वीर्य स्वरूप की रचना पूर्ण प्रगट करता है, तब उसे सामायिक पूरी होती है। आहाहा! यह तो मिथ्या सामायिक में व्यवहार तो नहीं परन्तु मिथ्यात्व है। आहाहा! जिसमें धर्म नहीं। धर्म को अधर्म मानना और अधर्म को धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। पच्चीस मिथ्यात्व आते हैं न? आहाहा! जगत से... तिरने का उपाय अलौकिक है। वह वीतराग केवली के अतिरिक्त, केवली की वाणी के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है, उसे जिनशासनसिद्ध (-जिनशासन से निश्चित हुआ)...** वीतराग केवलज्ञानी के ज्ञान में सिद्ध हुआ **(-जिनशासन से निश्चित हुआ) अणुव्रतरूप...** आहाहा! उसे अणुव्रत सामायिक कहते हैं। आहाहा! मुनि

को, हों! मुनि होते हैं, वे पहले द्रव्यलिंगी होते हैं। पहले नग्नपना होता है। मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता।

मुमुक्षु : टुकड़ा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब बड़ा थोपला होता है? यह सब रखते हैं न, सब अज्ञान है। यह आर्यिकाएँ मिथ्यादृष्टि है, साधु मिथ्यादृष्टि है। सब मिथ्यादृष्टि है। वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे वह मिथ्यादृष्टि मूढ़, अज्ञानी है। वह जैन नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगता है। क्या हो? भाई! प्रभु का मार्ग कोई अलग और दुनिया दूसरे रास्ते चढ़ गयी। मार्ग रह गया अन्यत्र और दुनिया दूसरे रास्ते चढ़ गयी और माना कि हम कुछ जैन का धर्म करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .....पकड़कर कबूल करने बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! दूसरे प्रकार से संक्षिप्त में कहें तो वह तो ज्ञानस्वरूप प्रभु है। ज्ञान करे क्या? पर का करे? राग करे? मात्र बहुत तो ज्ञान पर को जाने। बस, व्यवहार की इतनी मर्यादा। पर को जाने। निश्चय से तो स्व को जाने। पर को भी निश्चय से जाने नहीं। आहाहा! ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान, नित्यानन्द नित्य प्रभु शाश्वत, ज्ञान और आनन्द की अनादि सत्ता पड़ी है, प्रसिद्ध है, प्रगट है, प्रसिद्ध है, व्यक्त है। गुप्त नहीं। आहाहा! अनन्त गुणों का संग्रह प्रभु प्रगट, प्रसिद्ध, प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष प्रगट है। आहाहा! उसके सन्मुख देखना नहीं और उसे छोड़कर विकल्प की बातें यह किया और वह किया, सामायिक की, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण किया, रात्रिभोजन नहीं किया। सब विकल्प अज्ञान, राग है। संसार के परिभ्रमण के कारण हैं। यह क्रियाकाण्ड शुभभाव भी घोर संसार में भटने का कारण है क्योंकि राग है। राग है, वहाँ आत्मा की हिंसा है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

(-जिनशासन से निश्चित हुआ)... जैन शासन में निश्चित हुई सामायिक ऐसी होती है। जैन वीतराग के मार्ग में, केवली परमात्मा के मार्ग में आर्त और रौद्रध्यानरहित (सामायिक ऐसी होती है)। आहाहा! आर्तध्यान के चार भेद सब हैं न, रौद्रध्यान के भेद न! कोई अंश न हो और अन्तरध्यान आनन्द का ध्यान हो। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में

तल्लीन पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में तृप्त-तृप्त हुआ है, उसे जैनशासन में सामायिक कहा जाता है। आहाहा! बहुत अन्तर है। मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया दूसरे विपरीत मार्ग में चढ़ गयी। जैन के नाम से विपरीत मार्ग में चढ़ गये। आहाहा!

यह तो मुनि की बात ली न? **जो मुनि... उसे अणुव्रतरूप सामायिक...** ऐसा कहा न? यह कहीं गृहस्थ की बात नहीं है। अणुव्रत शब्द आया है परन्तु मुनि के लिये आया है। जो परमात्मस्वरूप में पूर्ण लीन हैं, ऐसी जो पूर्ण वीतराग सामायिक है, वह यहाँ नहीं है, इसलिए उन्हें अपूर्ण है, इसलिए इसे अणुव्रत सामायिक कहा गया है। वीतरागी दशा अन्तर वीतरागी राग और द्वेष, आर्त और रौद्रध्यान से रहित दशा, वीतरागीदशा परन्तु अल्प है और पूर्ण नहीं, इसलिए उसे अणुव्रत सामायिक जैनशासन में सिद्ध हुई बात है। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा!

गाथा-१३०

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३०।।

यस्तु पुण्यं च पापं च भावं वर्जयति नित्यशः।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१३०।।

शुभाशुभपरिणामसमुपजनितसुकृतदुरितकर्मसन्न्यासविधानाख्यानमेतत्। बाह्याभ्यन्तर-परित्यागलक्षणलक्षितानां परमजिनयोगीश्वराणां चरणनलिनक्षालनसम्वाहनादिवैयावृत्त्य-करणजनितशुभपरिणतिविशेषसमुपार्जितं पुण्यकर्म, हिन्सानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहपरिणामसञ्जात-मशुभकर्म, यः सहजवैराग्यप्रासादशिखरशिखामणिः सन्सृतिपुरन्ध्रिकाविलासविभ्रमजन्मभूमि-स्थानं तत्कर्मद्वयमिति त्यजति, तस्य नित्यं केवलिमतसिद्धं सामायिकव्रतं भवतीति।

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [पुण्यं च] पुण्य तथा [पापं भावं च] पापरूप भाव को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।

बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित परमजिनयोगीश्वरों का चरण-कमलप्रक्षालन, [१]चरणकमलसंवाहन आदि वैयावृत्य करने से उत्पन्न होनेवाली शुभपरिणति विशेष से (विशिष्ट शुभ परिणति से) उपार्जित पुण्यकर्म को तथा हिंसा,

---

१- चरणकमलसंवाहन=पाँव दबाना; पगचंपी करना।

असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी स्त्री के [१]विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से, जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (-जो परम सहज वैराग्यवन्त मुनि) छोड़ता है, उसे नित्य केवलीमतसिद्ध (केवलियों के मत में निश्चित हुआ) सामायिकव्रत है।

गाथा - १३० पर प्रवचन

१३० (गाथा)

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१३०।।

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

टीका : यह, शुभाशुभ परिणाम से... शुभ और अशुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह सब शुभभाव है, यह संसार है, बन्धन है। आहाहा! और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग अशुभ है। यह शुभ और अशुभ **परिणाम से उत्पन्न होनेवाले...** इन शुभ और अशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले **सुकृतदुष्कृतरूप...** सुकृत और दुष्कृतरूप कर्म। इनके त्याग की विधि का, इनके त्याग की रीति का यह **कथन है। (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।** आहाहा! उसे सामायिक कहते हैं।

मुनि कैसे होते हैं? **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा नहीं, पात्र नहीं। माता से जैसा जन्मा, वैसा होता है। उसे जैनशासन में अनादि से जैनधर्म कहते आये हैं। यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो अभी नये निकले हैं। इसमें से कल्पित-विपरीत अर्थ करके, मिथ्यादृष्टि होकर शास्त्र बनाये। कठिन लगे, भाई! आहाहा! एक ओर भगवान के अनुगामी कहना और यहाँ कहे कि मिथ्यादृष्टि के अनुगामी है, बापू! आहाहा! उसमें भगवान की कही हुई बात से सब अत्यन्त विरुद्ध है।

१- विलासविभ्रम=विलासयुक्त हावभाव; क्रीड़ा।

सब विरुद्ध। देव का (स्वरूप) विरुद्ध, गुरु का विरुद्ध, शास्त्र का विरुद्ध, तत्त्व का विरुद्ध, धर्म का विरुद्ध।

मुमुक्षु : वस्त्र रखकर मुनि माने, तो सबमें विरुद्ध ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब में सब विपरीत है। मात्र वस्त्र के लिये नहीं। वस्त्रवाले साधु को साधु मानना, उसमें नव तत्त्व की भूल है। उसके नौ ही तत्त्व झूठे हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि जो मुनि है, वह छठवें गुणस्थान में, उसे वस्त्र का विकल्प नहीं होता और उस वस्त्र का विकल्प मानता है; इसलिए वह आस्रव को भी नहीं पहिचानता और जब वह विकल्प छठवाँ गुणस्थान हो, तब ऐसा वस्त्र का विकल्प नहीं होता, तब उसे संवर कहा जाता है। उस संवर को भी नहीं पहिचानता। वह वस्त्र न हो परन्तु कुछ भी तन्तु का टुकड़ा न हो तब उसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है। उसमें उसकी भूल है। बाकी अजीव में भी नग्नपने में संयोग नहीं होता। वस्त्र का संयोग मानता है, वह अजीव में भूल है। यह नवतत्त्व में भूल है। उसका एक भी तत्त्व सच्चा नहीं है। भूपतभाई! ऐसी बात है। यहाँ तो वीरान में-जंगल में पड़े हैं। कोई माने, न माने इसके साथ क्या है? मार्ग तो यह है। आहाहा!

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१३०॥

यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले... चाहे तो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, पंच परमेष्ठी की यादगिरि स्मरण करे, वह सब शुभभाव संसार है। वह **सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है।** आहाहा! **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** केवली भगवान के शासन में मुनि कैसे होते हैं? कि **बाह्य-अभ्यन्तर...** परिग्रह। बाह्य में वस्त्र-पात्र का टुकड़ा नहीं और अभ्यन्तर में राग का अंश नहीं। अभ्यन्तर चौदह प्रकार का परिग्रह, बाह्य दस प्रकार का परिग्रह। चौबीस प्रकार का परिग्रह है, उस सब परिग्रह का त्याग जिसे होता है। आहाहा!

जैनशासन में स्त्री को साधुपना नहीं होता। स्त्री को साधुपना नहीं आता और उसे साधुपना माने तो वह मिथ्यात्व को पोषण करता है। संसार की वृद्धि करता है। आहाहा! गजब बातें! और साधु को भी वस्त्रसहित, पात्रसहित (साधुपना नहीं होता)। वह भी कहाँ

है ? उपाश्रय उसके लिये बनाये हुए मकान आदि में अभी तो रहते हैं न, वह व्यवहार भी कहाँ है। आहाहा! यह प्रश्न (संवत्) १९६९ के वर्ष में हुआ था। दीक्षा १९७० के वर्ष में हुई। मैंने १९६९ में हमारे गुरु हीराजी महाराज से प्रश्न किया। १९६९ का वर्ष, चातुर्मास में, संसार में। महाराज को कहा - साधु के लिये मकान बनाया हो, तो उसे नौ कोटि जो है मन, वचन, काया, करना, कराना, और अनुमोदन, (उसमें) कौन सी कोटि टूटती है ? यह प्रश्न १९६९ के वर्ष में हुआ था। हीराजी महाराज तो भद्रिक थे, उन्हें ऐसा कि यह तो दीक्षा लेनेवाला ही है। ऐसा कहा कि तुम्हारे लिये भाई ने मकान बनाया और तुम रहो, उसमें क्या ? परन्तु उस मकान में रहना, वह ही अनुमोदन है। यह अनुमोदन की कोटि टूट जाती है। इन नौ कोटि में एक भी कोटि उसे नहीं रहती। वह अज्ञानी हो जाता है। आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष से चर्चा चलती है। बड़ी चर्चा की।

एक बार तो सब गाड़ी जोड़कर 'पालियाद' गये थे। १९६९ के वर्ष की बात है। चातुर्मास में। यह क्या ? तब गुलाबचन्दजी थे न ? राजकोट के गुलाबचन्द गाँधी थे। एकल विहारी थे। अकेले रहते थे। क्रिया कड़क अवश्य थी। उन्होंने कहा कि साधु के लिये मकान का कुछ भी किया हो और प्रयोग करे तो वह साधु नहीं है। हमने सुना हुआ नहीं। दुकान छोड़कर दीक्षा लेने निकला, उसमें यह बात सुनी नहीं। पहले सुनी। इसलिए फिर पालियाद पूछने गये। तो जवाब का कुछ ठिकाना नहीं। फिर (संवत्) १९६९ में राणपुर में पूछा, तब कुछ जवाब में ठिकाना नहीं। जो चीज़ जिसके लिये बनायी है, वह भले कर्ता स्वयं नहीं है, करने को कहा भी नहीं हो परन्तु उसके लिये बनायी हुई वह चीज़ ले तो उसे नवकोटि में सब कोटियाँ टूट जाती है। वह अप्रत्याख्यानी और अव्रती है।

मुमुक्षु : एक कोटि टूटी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ ही टूट गयी। फिर एक भी रही कहाँ ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक हो, यह तो साधु है। नौ ही कोटि टूट गयी। आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष की बात है। ६७ वर्ष (हुए)। आहाहा! परन्तु लोगों में कुछ विचार श्रेणी नहीं है। धन्धे आदि में निवृत्त नहीं है। एक घण्टे सुनने आवे। ऊपर पाट पर (बैठा हुआ) जो कहे, उसे स्वीकार करके चले जाए। तुलना करने को निवृत्त कहाँ है कि सत्य

क्या है और असत्य क्या है ? आहाहा ! वीतराग केवली परमात्मा का कथन क्या है और दुनिया अभी क्या कहती है ? इसका मेल करने को निवृत्त कहाँ है ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, परम जिनयोगी कैसे होते हैं ? परम योगी साधु कैसे होते हैं ? कि **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** बाह्य परिग्रह से रहित और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित। अकेले बाह्य से त्याग नहीं। अकेला नग्नपना तो अनन्त बार धारण किया। अभ्यन्तर में जो रागादि हैं, उनका भी जिन्हें परित्याग है। परित्याग शब्द है। परि- समस्त प्रकार से त्याग। आहाहा ! **बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप...** आहाहा ! **लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से लक्ष्य में लेनेयोग्य **परमजिनयोगीश्वरों का...** परम योगीश्वर का। **चरण-कमलप्रक्षालन,...** क्या कहते हैं ? ऐसे सन्त हों, उनके चरण में प्रक्षाल करे तो उसे शुभभाव होता है, धर्म नहीं। आहाहा ! ऐसे नहीं हैं, उनकी तो बात है ही नहीं परन्तु ऐसे मुनि जो हों... आहाहा !

बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित परमजिनयोगीश्वरों का चरण-कमलप्रक्षालन,... पैर को पानी से साफ करना। आहार लेने आते हैं, तब पानी डालकर (साफ करे)। **चरणकमलसंवाहन=पाँव दबाना; पगचंपी करना।** ऐसे मुनि, हों ! परन्तु। ऐसे मुनि को। वह सब शुभभाव है, पुण्य है, संसार है। आहाहा ! दूसरे वस्त्रवाले साधु की तो बात क्या करना ? वह तो स्वयं मिथ्यादृष्टि है और उसे मानता है, चरणस्पर्श करता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। वह जैन ही नहीं है। आहाहा ! ऐसे मुनि को भी पगचंपी और प्रक्षालन करे, अरे ! **वैयावृत्य करने से उत्पन्न होनेवाली शुभपरिणति...** उससे उत्पन्न होता शुभपरिणाम, पुण्यपरिणाम / बन्धन होता है, धर्म नहीं। आहाहा !

मुनि को आहार-पानी देने से संसारपरित नहीं होता, शुभभाव होता है। आहाहा ! कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर में विपाकसूत्र है। दस विपाक के अधिकार हैं। वे दसों मिथ्यादृष्टि है और साधु को आहार दिया और परितसंसार किया, ऐसा पाठ है। विपाक है, वह अत्यन्त मिथ्यादृष्टि ने बनाया हुआ है। ३२-४५ सब शास्त्र मिथ्यादृष्टि ने बनाये हैं। लोगों को कठिन पड़ता है, बापू ! परन्तु... आहाहा ! उस विपाकसूत्र के दस पाठ हैं। साधु को आहार दिया, वह देनेवाला मिथ्यादृष्टि है परन्तु साधु को (आहार) दिया तो परितसंसार किया—संसार तोड़ डाला। यह खोटी बात है। तथा ज्ञातासूत्र में मेघकुमार ने उस हाथी के

भव में खरगोश की दया पालन की, परितसंसार किया - यह झूठी बात है। पर की दया से शुभभाव होता है, परितसंसार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुभ से परितसंसार हो, ऐसा एक मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध से होता है, शुभ से नहीं होता। यह तो कहा, बड़ी चर्चा चली थी। रेवती, भगवान के लिये आहार लेने गयी। भगवतीसूत्र में पाठ है। वह सब कल्पित बनाया हुआ, मिथ्या, मिथ्यादृष्टि है। भगवान को रोग हुआ तो कैसा? सिंहअणगार आहार लेने गया। सिंहअणगार महिला के पास लेने गया, तो उसने वहाँ घोड़े के लिये बनाया हुआ आहार और भगवान के लिये बनाया हुआ, उसमें से घोड़े के लिये बनाया हुआ आहार लिया। परितसंसार किया, ऐसा पाठ है। एकदम झूठ। परद्रव्य की कोई भी क्रिया परिणाम में संसार का अन्त आते, ऐसा नहीं है। परद्रव्य का लक्ष्य जाए तो शुभभाव ही होता है। देव-शास्त्र-गुरु (पर लक्ष्य जाए तो) आहाहा! अरे! यह कब पहुँचे और कब जाए? शून्य कब लगाये?

ऐसे मुनि की भी सेवा करे, वैयावृत्त्य करे और शुभपरिणति को उपजावे। **शुभपरिणति विशेष से (विशिष्ट शुभ परिणति से) उपार्जित पुण्यकर्म....** ऐसे जो शुभपरिणाम से बँधा हुआ शुभकर्म। आहाहा! **तथा हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी...** आहाहा! मुनि की वैयावृत्त्य और चरणकमल की सेवा, यह पगचंपी करना, वह भाव **संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान...** है। आहाहा! वह भाव परद्रव्य की ओर झुकाव है अर्थात् शुभभाव है। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के सन्मुख देखे और उनका नाम ले तो शुभभाव संसार है, स्वआश्रय से संसार का नाश होता है। अन्दर आनन्द के नाथ का (आश्रय); पराश्रय से राग होता है। ओहोहो!

मुमुक्षु : सामायिक व्रत बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। सामायिक कैसी? आहाहा! सम्यग्दर्शन कहना किसे? आहाहा! विकल्परहित चिदानन्द ज्ञानमूर्ति अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, इसका भान होकर, अनुभव होकर प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है तो अभी उसका ठिकाना नहीं तो व्रत-फ्रत तो थे कब? आहाहा! (कोई

कहे), तुम यहाँ लड़कियों को ब्रह्मचर्य (व्रत) तो देते हो। वह शुभभाव है, धर्म नहीं। जो ब्रह्मचर्य ले, उसे शुभभाव होता है। पुण्यकर्म बँधता है। धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म नहीं कर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म है, धर्म नहीं। कहो, दामोदरभाई! ऐसा तो तुम्हारे पिताजी ने कभी नहीं कुछ सुना भी नहीं होगा।

मुमुक्षु : बाप-दादा की परम्परा छोड़ना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम्परा छोड़ना... यह परम्परा छोड़ी। आहाहा! बाप-दादा की परम्परा कैसे छोड़ी जाती है? यह वस्तु सत् है। भगवान तीन लोक के नाथ का पुकार है।

मुमुक्षु : सच्चे पिता तो भगवान हैं, उनकी परम्परा होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सच्चे पिता हैं और वे ही माता हैं। वह पिता कहाँ था? ऐसे तो अनन्त हो गये। आहाहा! जिनेश्वर पिता तीन लोक का नाथ, जगत पिता... आहाहा! जगत का नाथ जानने की अपेक्षा से। रक्षा करने की अपेक्षा से नहीं। आहाहा! उनके शासन में ऐसा कहा कि ऐसे जीव को पुण्यकर्म उत्पन्न होता है। ऐसे साधु नहीं, उन्हें पुण्य हो वह तो साधारण पापानुबन्धी पुण्य होता है। आहाहा! धर्म तो नहीं। यह पुण्य होता है। सच्चे साधु की वैयावृत्त्य से शुभभाव हो, वह पुण्य होता है। आहाहा!

तथा हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म को, वे दोनों कर्म संसाररूपी... आहाहा! **वे दोनों कर्म संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का...** उसके साथ विलास का हावभाव, संसारी स्त्री, भटकने की स्त्री... आहाहा! उसके साथ **विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से,...** वह विलास और विभ्रम भटकने का जन्मस्थान होने से। आहाहा! सन्तों को पड़ी है कुछ? स्वयं अपनी बात करते हैं। हम मुनि हैं। नग्न मुनि दिगम्बर सच्चे भावलिंगी, तथापि हमें हमारी वैयावृत्त्य से (पुण्य) बँधेगा। हम परद्रव्य हैं। बाकी उसे शुभभाव होगा, धर्म नहीं होगा। भले उसे आहार दिया हो या उसे... आहाहा! तीर्थंकर परमात्मा जब छद्मस्थ हों, तब आहार के लिये निकले। उन्हें जो आहार दे, उसे शुभभाव होता है, धर्म नहीं। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। अभी तो सब पूरा बिगड़ गया है।

यह पुण्य और पाप के परिणाम से होते कर्म, वह कर्म संसाररूपी स्त्री... आहाहा! उसके भटकने के **विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से, जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि....** मुनि। उसे छोड़ देता है, ऐसा कहते हैं। मुनि उसके सन्मुख नहीं देखते। आहाहा! सहज वैराग्य, पुण्य-पाप से वैराग्य, शुभ-अशुभभाव से भी वैराग्य। वह शुभ-अशुभभाव मेरा नहीं। आहाहा! विरक्त। शुभ-अशुभ से विरक्त, स्वरूप में रक्त, इसका नाम वैराग्य। स्त्री, पुत्र छोड़े, वह सब श्मशान वैराग्य है। वह वैराग्य नहीं है। अन्दर में पुण्य-पाप के भाव को छोड़े, समकितसहित छोड़े, उसे वैराग्य कहते हैं।

समयसार के पुण्य-पाप (अधिकार में) आता है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव जो छोड़ता है, उसे वैराग्य कहा जाता है परन्तु स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान छोड़कर यहाँ साधु होकर शुभभाव में आया, इससे साधु हो गया... वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का पोषण (करके) मिथ्यात्व बाँधता है। आहाहा! क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की संसार की वृद्धि करता है। उसमें भी स्त्री को तो साधुपना होता ही नहीं। उसे पाँचवें गुणस्थान से ऊपर तीन काल में नहीं हो सकता। वह भी दिगम्बर धर्म को सच्चा माने और अनुभव करे तो। श्वेताम्बर में तो स्त्री और पुरुष सब पूरा सम्प्रदाय मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहीं बात गुप्त नहीं रखते। आहाहा! सब चीज़ ऐसी है। कठिन पड़े, भाई! क्या हो?

वीतराग ऐसा कहते हैं और वीतराग ने कहा हुआ सन्त ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूत्रपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? वस्त्र का एक टुकड़ा रखे, वह निगोद में जाएगा। निगोद में जाएगा, ऐसा १८वीं गाथा में कहा कि परद्रव्य को मेरा माने अथवा परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य करे, उसे दुर्गति होगी। भगवान कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखे, उसकी दुर्गति होगी। क्योंकि उसे राग होगा। राग का फल स्वर्ग है। स्वर्ग दुर्गति है। स्वर्ग में कहाँ सुख है? सुगति तो एक सिद्धगति है। आहाहा! बहुत अन्तर, भूपतभाई! कितना बदलना इसमें? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! क्या हो? भाई!

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि (-जो परम सहज वैराग्यवन्त मुनि)... यह आर्तध्यान और जो भाव शुभ-अशुभ हैं, उन्हें छोड़ता है। जिससे कर्म बँधते हैं, उन भावों को छोड़ता है। आहाहा! **उसे नित्य केवलीमतसिद्ध...** ऐसे साधु को नित्य केवली ने स्वीकार किया हुआ **(केवलियों के मत में निश्चित हुआ)...** परमेश्वर के,

तीर्थंकरों के मत में सिद्ध हुआ वह सामायिक व्रत है। आहाहा! केवलियों के मत में निश्चित हुआ वह सामायिक है। आहाहा! अज्ञानियों ने कल्पित करके मत किया है, वह सामायिक नहीं है। केवली परमात्मा ने इस प्रकार से देखकर सिद्ध किया है। उसे सामायिक होती है। आहाहा! कठिन बात है। सम्प्रदाय की पकड़ होती है, पचास-पचास वर्ष निकाले वहाँ। अब उसमें कहते हैं कि वह सब मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्लोक-२१५

[अब इस १३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रान्ता)

त्यक्त्वा सर्वं सुकृत-दुरितं सन्सृतेर्मूलभूतं,
नित्यानन्दं व्रजति सहजं शुद्ध-चैतन्य-रूपम्।
तस्मिन् सदृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये,
पश्चादुच्चैः त्रिभुवनजनैरर्चितः सन् जिनः स्यात्।।२१५।।

(वीरछन्द)

भव-भव के जो मूलभूत सब पुण्य-पाप का करके त्याग।
सहज शुद्ध चैतन्यरूप आनन्द-नित्य को करता प्राप्त॥
वह सुदृष्टि जीवास्तिकाय में नित प्रति विचरण करता है।
फिर वह त्रिभुवनजन से पूजित-ऐसा जिनवर होता है॥२१५॥

श्लोकार्थ : सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर, नित्यानन्दमय, सहज, शुद्धचैतन्यरूप जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है; वह शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है और फिर त्रिभुवनजनों से (तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित ऐसा जिन होता है॥२१५॥

श्लोक- २१५ पर प्रवचन

[अब इस १३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:]

त्यक्त्वा सर्वं सुकृत-दुरितं सन्सृतेर्मूलभूतं,
नित्यानन्दं व्रजति सहजं शुद्ध-चैतन्य-रूपम्।
तस्मिन् सदृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये,
पश्चादुच्चै: त्रिभुवनजनैरर्चित: सन् जिन: स्यात्।।२१५।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीव...** जिसे आत्मा आनन्द का स्वाद आया है, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! देव-गुरु को माने, नव तत्त्व को माने, इसीलिए समकिती है, वह समकिती नहीं। नव तत्त्व के भेद को माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा भी शास्त्र में कहा है। कलश में आया है। नव तत्त्व के भेद हैं, उन्हें माने, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! एक स्वरूपी भगवान पूर्णानन्द का नाथ द्रव्यस्वभाव शक्ति से पूर्ण भरपूर, उसे जो सम्यक् रीति से माने, अनुभव से माने, वह **संसार के मूलभूत...** संसार का मूल कौन? पुण्य और पाप। आहाहा! संसार का-भटकने का मूल— पुण्य और पाप। आहाहा! ऐसे **सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,...** उन्हें छोड़ देता है। पुण्य-पाप का आदर नहीं करता। छोड़ देता है। आहाहा! **नित्यानन्दमय,...**

मुमुक्षु : आत्मा कैसा है, उसकी व्याख्या देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्या देते हैं। **नित्यानन्दमय,...** नित्य आनन्दमय। नित्य आनन्दवाला नहीं। नित्य आनन्दमय। आनन्दमय और आनन्दवाला इनमें अन्तर पड़ता है। आनन्दवाला, वह भेद पड़ता है। नित्य आनन्दमय प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! नित्य अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मा अन्दर विराजता है।

सहज, (स्वाभाविक) शुद्धचैतन्यरूप... और चैतन्य जिसका रूप स्वाभाविक है। आहाहा! अन्दर जानना-देखना, वह तो उसका सहज स्वरूप है। वह तो अनादि का उसका-आत्मा का नित्य स्वरूप है। आहाहा! ऐसे **जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...**

सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य-पाप को छोड़कर ऐसे **जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...** देखा? अस्तिकाय लिया। अस्तिकाय असंख्य प्रदेशी है। जैनमत के अतिरिक्त अन्यमत में यह कहीं नहीं है। एक वीतरागमार्ग में ही असंख्य प्रदेशी है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,... आहाहा! **नित्यानन्दमय, सहज, शुद्धचैतन्यरूप जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...** उन्हें छोड़ता है और इसे प्राप्त करता है। छोड़ता है, यह भाषा व्याख्यान में... और इसे प्राप्त करता है तो वह छूट जाता है। अस्ति से। नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु को पकड़ता है, उसमें लीन होता है, इससे पुण्य और पाप दोनों छूट जाते हैं। छोड़ना नहीं पड़ते परन्तु उपदेश में तो ऐसा ही आवे न! छोड़ता है, ऐसा आया।

वह शुद्ध जीवास्तिकाय में... आहाहा! शुद्ध जीवास्तिकाय कहा। देखा? जीव में, ऐसा नहीं। जीवास्तिकाय असंख्य प्रदेशी है। आहाहा! जीव के असंख्य प्रदेश हैं। जैसे सांकल में मकोड़ा-कड़ी, ५०-१००-२०० हो। उसी प्रकार आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेश का पूरा पिण्ड है। आहाहा! **सदा विहरता है... शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है...** आहाहा! **और फिर त्रिभुवनजनों से...** फिर कहते हैं कि केवलज्ञान होगा उसे। इसलिए **त्रिभुवनजनों से (तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित...** आहाहा! फिर इन्द्रों से पूज्य है। केवलज्ञान होगा, इसलिए तीन लोक के अग्रेसर मुख्य जीव हैं, वे सब पूजेंगे। आहाहा! पहले ऐसी सामायिक करे, तब वह पुण्य-पाप को तजता है और फिर जब पूर्ण होता है, (तब)... आहाहा! **पूजित ऐसा जिन होता है।** त्रिभुवनजनों से। देखा? तीन भुवन के जनों से, तीन लोक के जीवों से। इन तीन लोक में ऊँचा जीव हो, वही गिना जाता है। दूसरे भानरहित हों, वे गिनने में नहीं आते। आहाहा! तीन लोक से पूजित है। वे तो सब गरीब मनुष्य, मिथ्यादृष्टि सब आना चाहिए परन्तु इसका अर्थ जगत में जो सम्यग्दृष्टि और धर्मी जीव हैं, वे तीन लोक में बड़े हैं। उनसे वह पूज्य है। आहाहा! है? **(तीन लोक के जीवों से) अत्यन्त पूजित ऐसा...** अत्यन्त पूजित ऐसा। **जिन होता है।** आहाहा! पूरा-पूरा वीतराग और जिन होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)